स्कूल या यातनागृह ?

उदयपुर के एक निजी स्कूल में शिक्षिका द्वारा पीटने से हुई बच्चे की मौत हमारे समाज के लिए एक त्रासद और क्रूर घटना है। इसके बाद, कुछ ही दिन पहले गुडगांव के एक सरकारी स्कूल में भी एक बच्चे की इतनी निर्ममता से पिटाई की गई कि उसे गंभीर हालत में अस्पताल ले जाना पड़ा। दोनों ही घटनाएं स्कूली वातारवण में व्याप्त क्रूरता के चरम उदाहरण हैं। ऐसा पहली बार नहीं हुआ है। जब भी कोई ऐसी घटना होती है हमारी चेतना को झकझोर जाती है। एक में बच्चे की मौत और दूसरी में गंभीर हालत होने की वजह से ये घटनाएं मीडिया की सुर्खियों का विषय रहीं लेकिन इनके अलावा आए दिन बच्चों के साथ होने वाली मार-पीट की घटनाओं की न तो मीडिया के पास खबर है और न ही इससे संबंधित आंकड़े उपलब्ध हैं।

बच्चों को शारीरिक दंड देना हमारी शिक्षा प्रणाली का अभिन्न हिस्सा रहा है। इस तरह के अनुभवों से हमारी पीढ़ी के लोग भी गुजरे हैं और हमारे माता-पिताओं की पीढ़ी में ऐसे लाखों लोग मिल जाएंगे जिन्हें स्कूली वातावरण की इसी क्रूरता ने स्कूलों से बाहर धकेल दिया या स्कूल जाने ही नहीं दिया। बच्चों के स्कूल नहीं जाने या शिक्षा के प्रति अरुचि को शिक्षा जगत या समाज में चाहे शिक्षा के प्रति चेतना का अभाव कहा जाए लेकिन ज्यादातर बच्चे आज भी इसी भय से स्कूल नहीं जाना चाहते। स्कूल जाना उन्हें यातनागृह में जाने से कम नहीं लगता। बच्चों के लिए यह भी त्रासदी है कि यदि वे स्कूल नहीं जाना चाहें तो एक तरफ माता-पिता का स्कूल जाने के लिए दबाव और दूसरी तरफ स्कूल की वह यातनामयी दुनिया। आज के समय में यह मध्यमवर्गीय त्रासदी है कि बच्चों को अनिवार्य रूप से स्कूल तो भेजना चाहते हैं। उन्हें भी समझ नहीं आता कि यदि वे बच्चे को स्कूल नहीं भेजेंगे तो वे करेंगे क्या और हमारे पास विकल्प भी इसी तरह के स्कूलों के हैं। बच्चे हमेशा कुंए और खाई के द्वंद्व में जीने को अभिशप्त होते हैं। यह विशेषता निजी और सरकारी, दोनों ही तरह के, स्कूलों की समान रूप से है।

यह माना जाता है कि शारीरिक दण्ड गलती करने पर व्यक्ति के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन के लिए दिया जाता है। दुनिया के सभी देशों में इसी मंशा से घरेलू तौर पर, स्कूलों और न्यायिक प्रक्रियाओं में दण्ड देने का प्रावधान रहा है। इससे व्यक्ति या बच्चे के व्यवहार में परिवर्तन को स्वयं हमारे अनुभवों के माध्यम से समझ सकते हैं कि शारीरिक दण्ड से हमारे व्यवहार में कितना सकारात्मक परिवर्तन हुआ। शारीरिक दण्ड पर हुए तमाम शोध यह बताते हैं कि इससे बच्चों के मन पर पड़ने वाले प्रभाव बुरे होते हैं। जिन बच्चों को शारीरिक दण्ड दिया जाता है वे वयस्कों से घृणा करने लगते हैं, संकोची स्वभाव के हो जाते हैं, उन्हें असुरक्षा बोध घेर लेता है, किशोर नशाखोरी जैसी आदतों में पड़ जाते हैं, व्यवहार में व्यग्रता बढ़ जाती है और उनकी दूसरों पर निर्भरता बन जाती है। शारीरिक दण्ड के विरोध में चले आन्दोलनों के प्रभाव में दुनिया के बहुत से देशों ने कानून बनाकर बच्चों को घर और स्कूल में दिए जाने वाले शारीरिक दण्ड से सुरक्षा के प्रावधान किए हैं। यूरोप के अधिकांश देश स्कूलों और घरों में दिए जाने वाले शारीरिक दण्ड को जुर्म की श्रेणी में मानते हैं और शिक्षक और अभिभावकों के प्रति कानूनी कार्यवाही का प्रावधान है।

भारत में सुप्रीम कोर्ट ने शारीरिक दण्ड पर पूरी तरह से रोक लगा दी है। लेकिन इस पर अभी तक सिर्फ 6 राज्यों (दिल्ली, आंध्र प्रदेश, गोवा, छत्तीसगढ़, तमिलनाडु और पश्चिमी बंगाल) ने ही अमल किया है। वर्ष 2004 में भारत

के तत्कालीन शिक्षामंत्री मुरली मनोहर जोशी ने यह घोषणा की थी कि स्कूलों में शारीरिक दण्ड को गैर कानूनी बनाने के लिए संसद में एक बिल लेकर आएंगे। अभी तक इस तरह का बिल तो पारित नहीं हुआ है लेकिन अनिवार्य शिक्षा विधेयक में परिवर्तन कर बच्चों को दिए जाने वाले दण्ड को आपराधिक कृत्य घोषित करने की सिफारिश करने का आश्वासन दिया है। स्कूल में शिक्षक द्वारा शारीरिक दण्ड दिए जाने पर अभिभावक शिक्षक के खिलाफ कानूनी कार्यवाही कर सकते हैं। यदि अभिभावक नहीं करते हैं तो यह हेडमास्टर या संस्था प्रधान की जिम्मेदारी होगी कि वह इस पर कानूनी कार्यवाही करे।

राजस्थान में राज्य सरकार ने अभी तक इस पर पूरी तरह से रोक नहीं लगाई है। सरकार या शिक्षा विभाग द्वारा किसी भी प्रकार का शासनादेश इस संदर्भ में जारी नहीं किया है। सरकार और शिक्षा विभाग की ओर से कुछ निर्देश या दिशा निर्देश तीन वर्ष पहले जारी किए गए थे। उरमूल संस्था, राजस्थान ने बच्चों को घर और स्कूलों में दिए जाने वाले दण्ड के बच्चों पर पड़ने वाले प्रभावों का एक अध्ययन किया है - (उरमूल संस्था, राजस्थान द्वारा घर एवं स्कूलों में शारीरिक दण्ड पर किए गए अध्ययन की रिपोर्ट-'इम्पेक्ट ऑफ कॉरपोरल पनिशमेंट ऑन स्कूल चिल्ड्रन' मई, 2006)। यह अध्ययन चार राज्यों (उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और आंध्रप्रदेश) में किया गया था। इस अध्ययन में पाया गया कि शारीरिक दण्ड विरोधी प्रावधानों के बावजूद स्कूलों और घरों में बच्चों की पिटाई आम बात है और अभिभावक तथा शिक्षक इसे बच्चों के लिए आवश्यक मानते हैं। अध्ययन बताता है कि राजस्थान के शिक्षा विभाग के कार्यालय शारीरिक दण्ड विरोधी प्रवाधानों को गंभीरता से नहीं लेते। शिक्षा विभाग के विभिन्न कार्यालयों में इन निर्देशों की एक प्रति तक नहीं मिली। कोर्ट के आदेशों और शिक्षा विभाग द्वारा तय किए दिशा निर्देशों के बावजूद वे कौनसे कारण हैं कि घरों या स्कूलों में शारीरिक दण्ड को शिक्षक या अभिभावक तिलांजली नहीं देना चाहते ?

ऐसी घटनाओं के पीछे हमारे समाज और शिक्षा तंत्र में बैठी वे मान्यताएं हैं जो कि शिक्षक और अभिभावकों को दण्ड देने का 'वैध अधिकार' दिलाती हैं। यह माना जाता है कि बच्चों को सिखाने या अनुशासन में रखने के लिए दण्ड देना या भय दिखाना जरूरी है। यह बात शिक्षक और माता-पिता में इतनी गहरी बैठी हुई है कि बिना दण्ड के बच्चों को अनुशासन में रखने या सिखा पाने की वे कल्पना तक नहीं कर सकते। बच्चे अपने परिवारों और स्कूलों में इसी मान्यता के चलते उत्पीड़न के शिकार होते हैं। अनुशासन और सिखाने को लेकर कैसी धारणा है जिसमें बच्चे की आत्मगरिमा एवं आत्मसम्मान को आए दिन कुचला जाता है ?

जिस बच्चे की पिटाई से मौत हुई उसका कसूर क्या था ? यह बच्चा शिक्षिका के कहने के बाद भी टेबिल के नीचे अपने पैरों को नहीं रख रहा था। यह किशोर, बारहवीं कक्षा का विद्यार्थी था और उम्र करीब 16-17 वर्ष तो रही ही होगी। इसकी मौत से ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि इसे कितनी क्रूरता से पीटा गया होगा। स्कूल प्रबंधन ने यह कहकर हाथ झाड़ लिए कि इस शिक्षिका का व्यवहार पहले भी ऐसा रहा है और इसी तरह की वजहों से उसे पहले भी निलंबित किया जा चुका है।

इस घटना को यदि दूसरे दृष्टिकोण से देखें, जब शिक्षिका उस बच्चे को इतनी बेरहमी से पीट रही थी उस समय बाकी बच्चे क्या कर रहे थे ? क्यों बाकी बच्चों ने, जो कि 16-17 वर्ष के रहे होंगे, इसका विरोध नहीं किया या उस बच्चे को क्यों नहीं बचाया ? हमारी शिक्षा व्यवस्था की यह बड़ी कमजोरी है कि वह न सिर्फ बच्चों को अन्याय सहने के लिए तैयार करती है बल्कि गलत चीजों के प्रति उनके प्रतिरोध करने की क्षमता को भी खत्म कर देती है। उन्हें समाज और स्कूल में इस तरह अनुकूलित किया जाता है कि वे अपनी आवाज को नहीं उठा पाएं। शिक्षक और अभिवावकों की सत्ता को अक्षुण्ण और चुनौतिविहीन तरीके से मानने के लिए तैयार करती है। इस पूरी प्रक्रिया में बच्चों का अनुकूलन इस तरह से होता है कि धीरे-धीरे उनके ऊपर होने वाले इस प्रकार के उत्पीड़न को वे अपनी नियति मान लेते हैं और उन्हें यह लगने लगता है कि गलती करने पर दण्ड तो दिया ही जाता है। यह उनकी सोच का भी स्थायी हिस्सा बन जाता है। मैंने कई बच्चों से इस विषय पर बात करने की कोशिश की है। वे कहते हैं कि शिक्षक दण्ड

इसलिए देते हैं क्योंकि हम गलती करते हैं। बच्चों के मन में इस तरह के विचारों का बिठा देना प्रतिरोध की संस्कृति को खत्म करना है। यदि इस लिहाज से देखा जाए तो ऐसे बच्चों से कैसा समाज बनेगा? लोकतंत्र का क्या भविष्य होगा ? बच्चों को शारीरिक दण्ड देना समता के विचार से भी उल्टा विचार है। यदि शिक्षकों का यही मानना है कि इससे बच्चे अनुशासित रहेंगे या सीखेंगे तो फिर तो कॉलेज और यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों के लिए भी यह दिया जाना चाहिए। लेकिन शिक्षक यह जानते हैं कि अपने बराबर के विद्यार्थियों पर हाथ उठाने का मतलब स्वयं पर भी हाथ उठवाना हो सकता है। अतः वे भी मासूम बच्चों को इसके लिए चुनते हैं जो कि उनके इस अन्याय का विरोध नहीं कर सकते।

दूसरी बात यह भी है कि जो शिक्षक इसी तरह के उत्पीड़नकारी वातावरण से निकलकर आते हैं उन्हें भी ये जायज तरीके लगते हैं। उन्होंने भी कभी अपने अनुभव पर इस तरह से विचार नहीं किया होता कि जब हमें इस तरह की यंत्रणा से गुजरना पड़ता था तो हमें कैसा लगता था। हमारे मन पर उसके असर क्या हैं ? यह दूसरी कमजोरी है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था पुनर्चिंतन की क्षमता को ही नहीं पनपने देती। यदि कोई शिक्षक अपनी शिक्षा के अनुभवों को, उनको दिए जाने वाले दण्ड के प्रभावों को बारीकी से देख ले तो नहीं लगता कि वह इस तरह का व्यवहार करेगा।

तीसरी बात यह कि शिक्षक के द्वारा चाहे ऐसी कार्यवाहियां अनुशासन या सिखाने के नाम पर की जाएं लेकिन यह भी सही है कि बच्चों के साथ सम्मानपूर्वक काम करना जहां एक तरफ अपने शिक्षायी अनुभवों पर पुनर्चिंतन का मसला है कहीं उससे ज्यादा यह शिक्षक की सामर्थ्य का भी मामला है। जब शिक्षक बच्चों की समस्याओं को सुलझाने में अपने आपको समर्थ नहीं पाता तो वह अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए इस तरह के हथियार काम में लेता है ताकि बच्चे सवाल पूछें ही नहीं या इसी तरह का अनुशासन कायम रखें। शारीरिक दण्ड और भय को वह अपनी अक्षमता को ढकने के लिए हथियार की तरह इस्तेमाल करते हैं।

इस घटना का एक पक्ष यह है कि मीडिया ने इस घटना को खबर बनाकर प्रचारित किया है। गाहे-ब-गाहे इस प्रकार की घटनाओं की खबर अखबारों में आती भी रहती हैं। लेकिन हमारे समाज में इस तरह के व्यवहारों के प्रति सोच में बदलाव लाने के लिए मीडिया ने कोई ठोस कदम नहीं उठाए। मीडिया जिसे बेहतर रूप में कर सकता है वह यह कि इस तरह के व्यवहारों पर शिक्षा से जुड़े व्यक्तिओं या मनोवैज्ञानिकों को बुलाकर चर्चा करानी चाहिए कि शारीरिक दण्ड और भय का बच्चों के सीखने और मन पर क्या प्रभाव पड़ता है ? लेकिन इस तरह की चर्चा नहीं की गई। इसी तरह की सामाजिक सोच की वजह से न जाने कितने बच्चे हमारे समाज में दण्ड और भय की इन त्रासद स्थितियों एवं खौफ के बीच से रोज गुजरते हैं। इस घटना का असर सिर्फ उन बच्चों पर ही नहीं पड़ता जो इस उत्पीड़न को बर्दाश्त करते हैं बल्कि वे सभी बच्चे भी प्रभावित होते हैं जो इसे देख रहे होते हैं या जिनकी जानकारी में यह आता है। बच्चों के लिए ये यातनामय स्थितियां तब तक बनी रहेंगी जब तक शिक्षातंत्र और समाज में बच्चों के लालन-पालन और शिक्षा संबंधी विचारों में परिवर्तन नहीं होगा। ◆

विकल्प